संस्कृत साहित्य सौरभ

रत्नावली

CC0530
975
015,2 HAR
152W3N55
H.000530

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

२३

000530

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE....................
ACC. No....................
CALL No....................
BANGALORE-1.

TATTVA PRACHAR CENTRE
BANGALORE

हर्ष-कृत

रत्नावली

श्री सुशील
द्वारा
कथासार

WORKS OF GANDHIJI IN KANNADA
OFFICE LIBRARY
Acc. No. ......975........
Date..29/7/1959 CHIEF EDITOR.

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
संपादित

ಕರ್ನಾಟಕ ಗಾಂಧೀ ಸ್ಮಾರಕ ನಿಧಿ (ರಿ)
ಪರಿಗ್ರಹಣ ಸಂಖ್ಯೆ
ACC. No.: 9830
ಗಾಂಧೀ ಗ್ರಂಥಾಲಯ, ಬೆಂಗಳೂರು-1

१९५८

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

...DHI SMARAKA ... LAYA
DATE..................
ACC No.........................
CALL No.....................
BANGALORE-1.
H.000530
015,2HAR 152w3N55

दूसरी बार : १९५८
मूल्य
सैंतीस नये पैसे

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

GANDHI S... ...HALAYA
DATE.....................
ACC. NO.........................
CALL NO.....................
BANGALORE-1.
000530

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिंदी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिंदी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिंदी में प्रस्तुत करें।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का संपादन हिंदी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं, और आगे निकल रही ह। आशा है, हिंदी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझग।

दूसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही ह और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चंद महीनों में दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'रत्नावली' के लेखक श्रीहर्ष भारत के प्रसिद्ध राजा हर्षवर्धन माने जाते हैं। इनके लिखे तीन ग्रंथ मिलते ह—रत्नावली, नागानंद और प्रिय-दर्शिका। बहुत-से लोगों का विचार था कि राजा हर्षवर्धन ने स्वयं नाटक नहीं लिखे, बल्कि अपने दरबार में रहनेवालों से लिखवाये थे और नाम अपना दे दिया था; लेकिन विद्वानों ने इस बात को अब गलत सिद्ध कर दिया है। इसके अलावा उनके कवि वाणभट्ट ने भी कई जगह महाराज हर्ष की काव्य-रचना की प्रशंसा की है। इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराज हर्ष कवि थे और उन्होंने 'रत्नावली' की रचना की थी।

'नागानंद' में बुद्ध की स्तुति की गई है। इससे जान पड़ता है कि वह बौधधर्म के उपासक थे, लेकिन इतिहासकार जानते हैं कि वह बुद्ध, सूर्य, विष्णु और शिव सभीको मानते थे। ब्राह्मणों और बुद्धों को समान रूप से दान देते थे। सन् ६०६ में गद्दी पर बैठे और ६४८ में स्वर्ग सिधारे। वह वीर ही नहीं थे, ललित कलाओं से भी उन्हें बहुत प्रेम था। दान देने में तो बहुत ही बढ़े हुए थे। भारत के अंतिम हिंदू सम्राट् थे।

'रत्नावली' शृंगार-रस-प्रधान नाटिका है। इसकी कथा कौतूहल से ओत-प्रोत है और अभिनय की दृष्टि से एक सफल रचना है। काव्य के चम-त्कार के अतिरिक्त चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह उत्तम रचना है। नाट्य-शास्त्र के नियमों का इसमें पूरी तरह पालन किया गया है। शैली सरस और सरल है। भाषा भी सहज है। शृंगार होते हुए भी इसमें त्याग की उपेक्षा नहीं है। इसकी मूल कथा 'कथा-सरित्सागर' से ली गई है। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' की छाया भी इसपर स्पष्ट है, फिर भी श्रीहर्ष ने अपनी प्रतिभा से इसमें जो चमत्कार पैदा किया है, वह अद्भुत है।

महाकवि वाणभट्ट ने 'हर्ष-चरित' में इन्हीं महाराज हर्ष का चरित्र लिखा है।

—संपादक

HI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE........................
ACC. NO................................
CALL NO........................
BANGALORE-1.

रत्नावली

: १ :

प्राचीन काल में महाराजा उदयन वत्स देश के प्रसिद्ध राजा हुए हैं। कौशांबी उनकी राजधानी थी। उनकी पटरानी का नाम वासवदत्ता था। वह उस काल के प्रतापी नरेश महाराज चंडप्रद्योत की पुत्री थी। वासवदत्ता के मामा विक्रमबाहु भी, जो सिंहल के राजा थे, अपने समय के प्रतापी नरेश थे। उनकी एक कन्या थी, जिसका नाम रत्नावली था। उसको देखकर एक सिद्ध पुरुष ने भविष्यवाणी की थी कि जो पुरुष इस कन्या का स्वामी होगा, वह चक्रवर्ती नरेश होगा। किसी तरह यह समाचार महाराज उदयन के स्वामिभक्त मंत्री यौगंधरायण के पास पहुंच गया। वह तुरंत महाराज विक्रमबाहु के पास गया और उनसे प्रार्थना की कि वह रत्नावली का विवाह महाराज उदयन के साथ कर दें। इस प्रार्थना पर सिंहल के महाराज बड़े असमंजस में पड़ गये। वह जानते थे कि उनकी भानजी वासवदत्ता महाराज उदयन की पटरानी है। रत्नावली उसकी सौत बनेगी। दूसरी तरफ वह यह भी जानते थे कि महाराज उदयन जैसा वर मिलना बड़ा

कठिन है। बहुत समय तक वह इसी द्विविधा में पड़े रहे, लेकिन अंत में उन्होंने निर्णय किया कि वह अपनी भानजी वासवदत्ता को कष्ट में नहीं डालेंगे और उन्होंने रत्नावली का विवाह महाराज उदयन से करने से इंकार कर दिया।

लेकिन यौगंधरायण इस प्रकार सरलता से पराजित होनेवाला नहीं था। उसने कुछ दिन बाद एक अफवाह फैला दी कि लावाणक नामक ग्राम में आग लग जाने के कारण वासवदत्ता उसमें जल मरी है। इसके पश्चात् उसने अपना संदेश फिर सिंहल के महाराज विक्रमबाहु के पास भेजा और रत्नावली का विवाह महाराज उदयन से करने की मांग की। महाराज अब मना न कर सके और उन्होंने रत्नावली को अपने मंत्री वसुभूति के साथ कौशांबी भेज दिया।

लेकिन उनका दुर्भाग्य कि मार्ग में नौका समुद्र में डूब गई। उसीके साथ डूब गये सिंहल के मंत्री वसुभूति, राजकुमारी रत्नावली और कंचुकी बाभ्रव्य। जब वे डूब रहे थे तो अचानक रत्नावली ने एक काष्ठ-फलक देखा और किसी तरह उसके सहारे तैरते हुए उसने अपने प्राणों की रक्षा की। जिस समय वह इस प्रकार सागर में तैर रही थी उसी समय सिंहल से लौटनेवाले व्यापा-

रियों के दल ने उसे देखा। उसके गले में जो रत्न-माला थी उससे उन्होंने उसे पहचान भी लिया। फिर तो बड़े आदर के साथ वे उसे यौगंधरायण के पास ले गये। वह सागर में मिली थी, इसलिए यौगंधरायण ने उसका नाम सागरिका रख दिया और फिर उसे महारानी वासवदत्ता को सौंप दिया। इस प्रकार रत्नावली सागरिका बनकर महारानी की परिचारिका के रूप में दिन बिताने लगी। नाटक की कथा इसके पश्चात् आरंभ होती है।

राजधानी में वसंतोत्सव मनाया जा रहा था। सब नगर-निवासी राग-रंग में उन्मत्त थे। केसर का चून, अबीर, गुलाल तथा दूसरे सुगंधित पदार्थों के उड़ाये जाने से कौशांबी नगर चारों ओर से पीला हो उठा था। फुहारे और पिचकारियों से सब एक-दूसरे पर रंग की वर्षा कर रहे थे और चारों ओर एक सुख देनेवाला अंधकार छाता जा रहा था।

राजमहल के ऊपर से महाराज उदयन अपने सखा वसंतक के साथ इस दृश्य को देख रहे थे। बोले, "अहा, नगरवासियों का प्रमोद चरम सीमा तक पहुंच रहा है, क्योंकि कुंकुम की बुकनी से लाल गुलाल उड़ रहे हैं, जिससे भोर-सा हो रहा है। उनसे और सोने के गहने

से और अपने बोझ से आगे के हिस्से को झुका देने-वाले अशोक के फूलों से ऐसा दिखाई दे रहा है, मानो यहां रहनेवालों की देह पर सोने का पानी चढ़ा दिया गया हो।

"और भी धारामंच से निकला हुआ पानी चारों ओर फैल रहा है। उसपर लोगों के चलने से आंगन में कीच हो रही है। गुलाल के उड़ने से अंधकर फैल रहा है। उस अंधकार में सांप के फन-जैसी शकलवाली पिचकारी, जो मणियों के प्रकाश में कभी-कभी दिखाई दे जाती है, मुझे पाताल लोक की याद दिलाती है।"

वसंतक तो इतना मस्त हुआ कि नीचे जाकर नाचने लगा। उसी समय मदनिका ने आकर सूचना दी, "महारानी निवेदन करती हैं कि आज वे मकरंद-उपवन में रक्त-अशोक के नीचे स्थापित भगवान काम देव की पूजा करेंगी, इसीलिए महाराज उनके साथ रहें।"

महाराज तुरंत उपवन की ओर चल पड़े। वहां पहुंचकर वसंतक बोला, "मित्र, देखिये-देखिये। यह उद्यान आपके आगमन से आपके प्रति आदर प्रकट कर रहा है। मलयानिल के हिलाने से यह जो आम की मंजरी का पराग उड़ रहा है वह शामियाना है। मत-वाले भौरों की झंकार से मिला हुआ मधुर कोकिल

स्वर संगीत है। वह सुनने में प्यारा लगता है।"

इस सुंदरता से महाराज भी बड़े प्रभावित हुए। तरह-तरह से उसका वर्णन करने लगे। थोड़ी देर में महारानी वासवदत्ता भी अपनी सखी कांचनमाला के साथ वहां जा पहुंची। सामग्री लिए हुए सागरिका आदि दासियां भी उनके साथ थीं। महारानी ने जब सागरिका को देखा तो वह क्रुद्ध हो उठीं। बोलीं, "सागरिके! तुम सारिका को क्यों छोड़ आईं। शीघ्र वहां जाओ। पूजा की सामग्री कांचनमाला को दे दो।"

सागरिका लौटने को हुई, तभी वह मन-ही-मन सोचने लगी कि मैं सारिका को तो किसी और को सौंप आई हूं। मैं तो यह देखना चाहती थी कि जैसे मेरे पिता के घर में कामदेव की पूजा होती है, क्या यहां भी उसी प्रकार होती है। इसलिए छिपकर देखूंगी। यह सोचकर वह वहां से गई नहीं, बल्कि एक लता-कुंज में छिपकर उस उत्सव को देखने लगी।

पूजा शुरू हुई। महाराज उदयन वसंतक के साथ रक्त-अशोक के पास आ गये थे। महारानी ने उनको आसन पर बैठाया और कामदेव का पूजन करने के पश्चात् उनका पूजन करने लगी। फूल चुनने में मग्न सागरिका कामदेवका पूजन न देख सकी। जिस समय

उसकी दृष्टि उधर गई उस समय महारानी महाराज की पूजा कर रही थी। उसे ऐसा लगा, मानो महाराज के रूप में वहां साक्षात कामदेव ही विराजमान हैं। इसलिए उसने भी कुछ फूल उनके नाम पर चढ़ाते हुए मन-ही-मन भगवान कामदेव को प्रणाम किया और लौट पड़ी। मार्ग में उसने सुना कि बैतालिक लोग महाराज उदयन की स्तुति कर रहे थे। वह चकित हो उठी, "अरे, ये तो वही महाराज उदयन हैं, जिनके लिए मेरे पिता ने मेरा दान किया है!" अब तो उसके मन में महाराज के लिए प्रेम उमड़ आया।

: २ :

महारानी वासवदत्ता की एक सखी थी, जिसका नाम सुसंगता था। वह सागरिका को बहुत प्रेम करती थी। एक दिन सागरिका अपनी सारिका को उसी सुसंगता के हाथ सौंपकर कहीं चली गई और जब बहुत देर तक नहीं लौटी तो सुसंगता उसे ढूंढ़ने के लिए निकली। मार्ग में उसे निपुणिका मिल गई। उसीसे उसे मालूम हुआ कि सागरिका आज बहुत व्याकुल हो रही थी। इसी अवस्था में चित्र बनाने की सामग्री लेकर वह कदली-गृह की ओर गई है। सुसंगता वहीं पहुंची और उसने देखा कि सागरिका बड़े प्रेम से एक चित्र बना रही

है। चुपके-चुपके वह उसके और पास पहुंची और जब उसने देखा कि वह चित्र महाराज उदयन का है तो वह चकित हो उठी।

सागरिका की आंखों में आंसू भरे हुए थे। वह अपने बनाये हुए चित्र को भी नहीं देख पा रही थी। इसलिए जब आंसू पोंछने के लिए उसने अपना मुंह ऊंचा किया तब उसकी दृष्टि सुसंगता पर पड़ी। घबराकर उसने चित्र को छिपाने की चेष्टा की, परंतु सुसंगता ने वह चित्र छीन लिया और पूछा, "सखी, यह किसका चित्र है ?"

सागरिका लजाकर बोली, वसंतोत्सव के दिन जिन भगवान कामदेव की पूजी हुई थी, उन्हींका।"

सुसंगता हँस पड़ी और उसने कूंची उठाकर उसी चित्र के पास सागरिका का चित्र भी बना दिया। सागरिका क्रोध से भरकर बोली, "अरे, यह तुमने मेरा चित्र क्यों बना दिया ?"

वह हँसकर बोली, "तुमने केवल कामदेव का चित्र बनाया था। मैंने उसके साथ रति का भी बना दिया है।"

सागरिका समझ गई कि यह भेद तो खुल गया है। सो वह अपनी सखी का हाथ पकड़कर बोली, "मैं बहुत लज्जित हूं, लेकिन कृपाकर यह बात किसीसे न कहना।"

सुसंगता बोली, "मैं तो नहीं कहूंगी, परंतु इस

सारिका से सावधान रहना। कहीं यह सब बातें रटकर किसीसे न कह दे।"

वे इस प्रकार बातें कर रही थीं कि कि नेपथ्य में शोर मचने लगा, "महाराज का पालतू बंदर छूट गया, वह राजभवन में प्रवेश कर रहा है। उसके बालक घबराये हुए उसका पीछा कर रहे हैं। स्त्रियां भयभीत हो रही हैं। उसके पांवों में बंधा हुआ घुंघरू बज रहा है। वह दरवाजे लांघता जा रहा है। उसके गले में सोने की जंजीर लटक रही है, जिसे तोड़कर वह भागा है।"

तभी वह बंदर उत्पात मचाता हुआ उधर आ निकला। दोनों सखियां भागकर एक पेड़ की ओट में खड़ी हो गईं। चित्र वहीं पड़ा रह गया। बंदर ने आकर सारिका का पिंजड़ा खोल दिया। वह निकल भागी। बात खुल जाने के भय से दोनों सखियां उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ीं। उनके जाने के बाद महाराज उदयन और वसंतक भी उधर आ निकले। सारिका एक पेड़ की शाखा पर बैठी हुई उन सब बातों को दोहरा रही थी। पहले तो वसंतक यह स्वर सुनकर डर गया। बोला, "इस पेड़ पर कोई भूत रहता है।"

पर महाराज उदयन ने ध्यानपूर्वक सुना तो समझ गये। बोले, "यह तो सारिका है।" विदूषक ने कहा,

"ओह, यह सारिका है ! कलमुंही, क्या तू समझती है कि मैं डरता हूं। ठहर, मैं तुझे अभी गिराता हूं।"

वह आगे बढ़ा, महाराज ने रोक दिया। उसका स्वर स्पष्ट हो रहा था। अब तो उन्होंने वे सब बातें सुन लीं और उस चित्र को भी देख लिया, जो घबराहट में भाग जाने के कारण सागरिका वहीं छोड़ गई थी। उस चित्र पर राजा मोहित हो गया और उसकी प्रशंसा करने लगा। तभी सुसंगता और सागरिका उस चित्र को लेने के लिए वहां आईं और महाराज की बातें सुनने लगीं।

यही नहीं, सुसंगता उस चित्र को लेने के बहाने महाराज के पास पहुंची। उसने सब बातें साफ-साफ उनसे निवेदन कर दीं। और उनको सागरिका से मिला भी दिया।

इसी समय महारानी वासवदत्ता भी उधर आ निकलीं। वे महाराज की लगाई हुई नवमालिका देखने को उत्सुक थीं। उन्होंने महाराज का स्वर सुना तो उनके पास पहुंची और उनको प्रणाम किया। तबतक साग-रिका चली गई थी, पर वह चित्र उन्हींके पास था। महाराज ने तुरंत वसंतक से उस चित्र को छिपाने के लिए कहा। उसने उस चित्र को अपनी बगल में दबा-

कर ऊपर से चादर ओढ़ ली ।

महारानी ने पूछा, "महाराज, क्या नवमालिका फूली है ?"

महाराज बोले, "मैंने अभी नहीं देखी । आओ, तुम्हारे साथ देखें ।"

महारानी ने कहा, "आपके मुख से जान पड़ता है कि नवमालिका फूल चुकी है। अब मैं नहीं जाऊंगी ।"

यह सुनकर विदूषक बांह फैलाकर नाचने लगा । नाचते समय वह चित्र नीचे गिर पड़ा । महारानी ने उसे देख लिया । उसे देखकर महारानी सब-कुछ समझ गईं । मन में वह बहुत क्रुद्ध हुईं, पर ऊपर से शांत बनी रहीं । विनयपूर्वक बोलीं, "मेरे सिर में पीड़ा है । मैं जा रही हूं ।"

महाराज भी सबकुछ समझ गये। उन्होंने महारानी को प्रसन्न करने की बहुत चेष्टा की, लेकिन वह किसी प्रकार न मानीं और सिरदर्द का बहाना करके वहां से चली गईं ।

: ३ :

इस घटना के बाद महाराज बड़े दुखी रहने लगे । उनका मन सागरिका से मिलने के लिए व्याकुल हो उठा । विदूषक वसंतक ने यह देखा तो उसे बड़ी चिंता हुई ।

एक दिन उसने सुसंगता दासी को बुलाया और समझाकर कहा, "महाराज की अस्वस्थता का कारण सागरिका है। क्या तुम उससे मिलने का कोई उपाय कर सकती हो?"

सुसंगता बोली, "अच्छी बात है। मैं सागरिका को महारानी वासवदत्ता के कपड़े पहनाऊंगी और स्वयं कांचनमाला का वेश धारण करूंगी। सायंकाल के समय हम दोनों माधवीलता के मंडप में जायंगी। उस समय आप महाराज को वहां ले आवें।"

यह सुनकर वसंतक बहुत प्रसन्न हुआ और महाराज को यह समाचार सुनाने के लिए तुरंत उनके पास चला गया। लेकिन इसी समय महारानी की दासी कांचनमाला सब-कुछ सुन रही थी। उसने जाकर महारानी से सब बातें कह दीं। इसका परिणाम यह हुआ कि जब सायंकाल के समय महाराज सागरिका से मिलने के लिए माधवीमंडप पहुंचे तो महारानी वासवदत्ता भी कांचनमाला के साथ वहां आईं। कांचनमाला ने संकेत से वसंतक को अपने पास बुलाया और महारानी को दिखा दिया। बसंतक मुस्कराकर बोला, "अरे, तुमने तो कांचनमाला का वेश बहुत ही अच्छा बनाया है और सागरिका तो सचमुच महारानी वासवदत्ता मालूम होती है।"

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
BANGALORE-1.

यह कहकर वह दोनों को महाराज के पास ले गया।

महाराज महारानी वासवदत्ता को सागरिका समझकर उससे बातें करने का प्रयत्न करने लगे। लेकिन वासवदत्ता आंसू बहाती हुई मौन खड़ी रही। जब महाराज ने उसे मनाने का बहुत प्रयत्न किया तब उसने क्रोध में भरकर अपना घूंघट उठा दिया और कहा, "क्या मैं सागरिका हूं ? आप तो सागरिका के लिए इतने बेचैन हो रहे हैं कि आपको सबकुछ सागरिकामय ही दिखाई दे रहा है !"

यह जानकर कि यह तो सचमुच महारानी वासवदत्ता हैं, महाराज घबरा गये और उन्होंने हाथ जोड़कर महारानी को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया, यहांतक कि वह उनके चरणों में गिर पड़े। लेकिन महारानी नहीं मानीं। बोलीं, "निश्चय ही मैं निर्लज्ज हूं, जो आपके हृदय को जानकर भी क्रोध करती हूं। आप यहां सुख से रहिये। मैं जाती हूं।" और वह चली गईं।

महाराज बहुत दुखी हुए। इतने में वासवदत्ता का वेश धारण किये हुए सागरिका उधर आ निकली। उसे सबकुछ मालूम हो चुका था। वह बहुत परेशान थी। जीना उसके लिए कठिन हो गया था। ऐसी स्थिति में उसने फांसी लगाकर मर जाने का निश्चय किया।

यह निश्चय करके वह अशोक वृक्ष के नीचे पहुंची। उसी समय महाराज और विदूषक ने उसे देखा। उसे देखकर वसंतक पुकार उठा, "मित्र, रक्षा करो, महारानी फांसी लगाकर मर रही हैं।"

राजा ने तुरंत आगे बढ़कर फांसी का फंदा उसके गले से निकाल लिया और अपनी सौगंध देकर उसे वैसा करने से रोका।

सागरिका ने जब महाराज को देखा तो वह हर्ष और विस्मय से भर उठी, पर प्रकट में बोली, "महाराज, मुझे छोड़ दीजिये, मैं पराधीन हूं। मरने का फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा।"

ये बातें हो रही थीं कि महारानी वासवदत्ता फिर उधर आईं। वह अप्रसन्न होकर चली गई थीं, लेकिन महल में पहुंचकर उन्हें अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा और वह महाराज को प्रसन्न करने के लिए आई थीं। लेकिन यहां आकर उन्होंने देखा कि महाराज तो सचमुच सागरिका से बातें कर रहे हैं। अब तो उनका पारा एकदम चढ़ गया। महाराज ने उनको मनाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन वह सफल न हो सके। यह देखकर वसंतक बोला, "महारानी, गलती मेरी है। सागरिका को आप समझकर मैं महाराज को बुला लाया था।

यह फांसी लगाकर मर रही थी। मेरी बातों पर विश्वास न हो तो इस लताफांस को देख लीजिए।"

वासवदत्ता और भी क्रुद्ध हो उठी। समझ गई कि यह सब चाल विदूषक की है। इसलिए उन्होंने कांचनमाला से कहा, "इस लताफांस से इस ब्राह्मण को बांध लो और सागरिका को भी अपने साथ ले चलो।"

ऐसा ही किया गया। राजा यह सब देखते रहे, लेकिन कुछ कर नहीं सके। ये सब चले गये तो वह भी महारानी को प्रसन्न करने के लिए उनके पीछे-पीछे चले।

: ४ :

विदूषक को तो बाद में छुट्टी मिल गई। लेकिन सागरिका को महल के किसी अज्ञात भाग में कैद कर दिया गया और यह खबर फैला दी गई कि सागरिका को महारानी ने उज्जयिनी भेज दिया।

अपनी सखी की यह अवस्था देखकर सुसंगता बहुत दुखी हुई और अचानक एक दिन वह विदूषक से मिली तो उसने कहा, "न जाने महारानी ने सागरिका को कहां भेज दिया है। सुनते हैं, उसे उज्जयिनी भेजा गया है, लेकिन यह बात ठीक मालूम नहीं होती। सागरिका को जब अपने जीवन की कोई आशा न रही तो

उसने यह रत्नमाला मुझे दे दी थी, इसे आप स्वीकार कर लें।"

यह सुनकर वसंतक भी बहुत दुखी हुआ। बोला, "सुसंगता, यह समाचार सुनकर तो मेरा जी यह माला लेने को नहीं करता।"

लेकिन जब सुसंगता ने बारबार रोकर उससे वह प्रार्थना की तो उसने कहा, "अच्छा लाओ। इसीको देखकर मेरा मित्र धीरज रखेगा।

उसने यह माला ले ली। लेकिन उस माला को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछने लगा, "ऐसा सुंदर अलंकार उसे कहां मिला?"

सुसंगता ने कहा, "मैंने भी यही बात अपनी सखी से पूछी थी। लेकिन तब उसने ऊपर की ओर देखकर सांस ली और कहा, 'सुसंगते, यह अब जानकर क्या करोगी?' और रोने लगी।"

यह सुनकर वसंतक ने मन-ही-मन सोचा कि हो-न-हो सागरिका किसी बड़े कुल की कन्या है, नहीं तो ऐसा दुर्लभ अलंकार उसे कहां मिल सकता था?

वह इसी प्रकार बातें कर रहा था कि महाराज मंडप की ओर जाते हुए दिखाई दिये। वसंतक शीघ्र उनके पास पहुंचा और सागरिका की सारी कथा उनको

कह सुनाई । वह माला भी उन्हींको देदी । महाराज यह सब सुनकर बहुत ही व्याकुल हुए ।

इतने में प्रधान सेनापति रुम्णवान का भानजा विजयवर्मा एक शुभ समाचार लेकर आया । महाराज को प्रणाम करके उसने कहा, "महाराज, सौभाग्य से सेनापति रुम्णवान विजयी हुए हैं। कोशल देश जीत लिया गया है ।"

यह समाचार सुनकर महाराज प्रसन्न हो उठे। बोले, "बताओ, कैसे क्या हुआ ? विस्तार से सुनना चाहता हूं ।" विजयवर्मा ने उत्तर दिया, "महाराज, सुनिये, हम लोगों ने श्रीमान की आज्ञा से थोड़े ही दिनों में अनेक हाथी-घोड़े और पैदल सैनिकों को लेकर कोशल नरेश को घेर लिया ।"

राजा ने पूछा "उसके बाद क्या हुआ ?"

विजयवर्मा ने कहा--"उसके बाद कोशल नरेश ने दुखी होकर अपनी सेना तैयार की। उसमें हाथी प्रधान थे।"

वसंतक उतावली में बोला—"अजी जल्दी कहो मेरा दिल धड़क रहा है ।"

राजा ने पूछा--"उसके बाद ?"

विजयवर्मा ने कहा--"लड़ने का निश्चय करके कोशलनरेश अपने दुर्ग से बाहर निकले। वह विंध्य पर्वत

के समान थे। उनकी सेना के हाथियों ने दसों दिशाएं घेर रखी थीं और वे हमारी पैदल सेना रौंद रहे थे। तभी हमारा सेनापति रुम्णवान आगे बढ़ा और दुगने उत्साह से वाणवर्षा करते हुए उसने हाथियों की सेना को रोक लिया। फिर तो तलवार से सिर काटे जाने लगे। रक्त की नदी बहने लगी। हथियार खन-खनाने लगे। कवचों से चिनगारियां निकलने लगीं। इसी समय विजय को रोकनेवाले हाथी पर सवार कोशलनरेश को सेनापति रुम्णवान ने ललकारा और शीघ्र ही स्वर्ग भेज दिया।" यह सब सुनकर महाराज ने विजयवर्मा को पारितोषिक देने के लिए यौगंधरायण के पास भेज दिया।

इसी समय कांचनमाला महाराज के पास आई। बोली, "महाराज, महारानी कहती हैं कि उज्जयिनी से सर्वसिद्धि नाम का ऐंद्रजालिक आया है। महाराज उसे दर्शन दें।"

महाराज बोले, "हमको इंद्रजाल से बहुत स्नेह है। उसे शीघ्र बुला लाओ।"

ऐंद्रिजालिक तुरंत वहां आ गया। उसने कहा, "महाराज की जय हो! पृथ्वी पर चंद्रमा, आकाश में पर्वत, जल में आग अथवा दोपहर में संध्या, क्या दिखलाया

जाय ? आज्ञा दें। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो कुछ महाराज हृदय से देखना चाहें, वह सब चीजें गुरु-मंत्र के प्रभाव से मैं दिखा दूंगा।"

महाराज ने सबसे पहले महारानी वासवदत्ता को बुलाया। उनके आने के बाद ऐंद्रजालिक ने अपना काम आरंभ किया। नाना प्रकार के नृत्य करते हुए वह बोला, "ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इंद्रादि देवताओं, सिद्धों, चारणों और अप्सराओं के समूह को आकाश में दिखाता हूं।"

यह सुनकर सबने ऊपर की ओर देखा। आश्चर्य से चकित होकर महाराज बोले, "आश्चर्य देवी! देखो तो यह कमल में ब्रह्मा, यह चंद्रशेखर शंकर, धनुष-खड्ग-चक्र-गदा से युक्त, चारों हाथों से विभूषित भगवान् विष्णु, यह ऐरावत पर आसीन देवराज और ये दूसरे देवता दिखाई दे रहे हैं। उधर अप्सराएं नूपुर झंकारती हुई नृत्य कर रही हैं।"

इसी समय विदूषक ने उन सबकी दृष्टि बचाकर ऐंद्रजालिक से कहा, "अरे बेवकूफ, देवी-देवताओं और अप्सराओं को दिखाकर क्या करेगा? यदि तुम महाराज को प्रसन्न करना चाहते हो तो सागरिका को दिखाओ।"

वह इस प्रकार ऐंद्रजालिक को समझा ही रहा था कि वसुंधरा ने वहां आकर निवेदन किया, "महाराज, यौगंधरायण निवेदन करते हैं कि विक्रमबाहु के प्रधान अमात्य वसुभूति कंचुकी बाभ्रव्य के साथ आये हैं। इस शुभ अवसर पर आप उनसे मिल लें। कुछ देर में मैं भी आ रहा हूं।"

यह सुनकर वासवदत्ता ने महाराज से कहा, "तबतक के लिए इंद्रजाल बंद रखिये। मामा के घर से प्रधान मंत्री आये हैं, उनसे मिल लीजिये।"

महाराज ने इसपर ऐंद्रजालिक से कुछ देर विश्राम करने को कहा। लेकिन जाते समय उसने प्रार्थना की कि "मेरी एक और कला श्रीमान को देखनी होगी।"

महाराज बोले, "देखूंगा।"

महारानी ने भी कांचनमाला से कहा, "कांचनमाले, जाओ, इसे इनाम दिलवाओ।"

उसके जाने के बाद वसंतक वसुभूति और बाभ्रव्य को बुला लाया। मार्ग में वसुभूति महाराज उदयन के वैभव को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। बोला, "कभी मतवाले हाथी तो कभी घोड़े मेरी दृष्टि को खींचते हैं। कभी मैं संगीत लहरी में गोते लगाता हूं, कभी राजगोष्ठी का आनंद लेता हूं। इन बाहरी कक्षों को देख-

कर मुझे सिंहल नरेश की समृद्धि भूलती जा रही है। यहां की तड़क-भड़क में मैं गंवई गांव का आदमी हो रहा हूं।"

वह इसी प्रकार सोच रहा था कि वसंतक ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया। तभी उसकी दृष्टि वसंतक के गले पर पड़ी रत्नमाला पर गई। सोचने लगा कि यह रत्नमाला तो राजा ने राजकुमारी को चलते समय दी थी। फिर सोचा कि इस महान् राजकुल में रत्नों की क्या कमी है। समानता होना असंभव नहीं है।"

यह सोचते हुए वे सब महाराज के पास जा पहुंचे। प्रणाम आदि के अनंतर सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गये।

महाराज ने पूछा, "मंत्रिवर, महाराज सिंहलेश्वर तो प्रसन्न हैं ?"

वसुभूति दुखित स्वर में बोला, "महाराज, कैसे कहूं, फिर भी कहना ही होगा। सिंहलेश्वर ने जब यह सुना कि महारानी वासवदत्ता अग्नि में जलकर मर गई हैं तो उन्होंने अपनी पुत्री रत्नावली को आपके पास भेजा था।"

राजा को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन

वसंतक ने पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

वसुभूति बोले, "जब हम यहां आ रहे थे तो हमारा बेड़ा समुद्र में डूब गया और उसीके साथ रत्नावली भी डूब गई।"

इतना कहते ही वसुभूति की आखें भर आईं। वह रो पड़ा और उसने सिर झुका लिया। महारानी वासवदत्ता का हृदय भी विचलित हो उठा। उनकी आंखों से टपटप आंसू गिरने लगे। बड़े दुःख से वह भी रो पड़ीं। बोलीं, "हाय बहन रत्नावली, तुम कहां गईं ? मुझे उत्तर दो।"

महाराज ने उन्हें ढाढ़स बंधाया और कहा, "धीरज रखो, देवी। दैव की गति कौन जानता है ! ये लोग भी तो डूब गये थे, लेकिन बच आये। कौन जाने, रत्नावली भी इसी प्रकार बच गई हो !"

वासवदत्ता बोली, "यह तो ठीक है, लेकिन हमारा इतना अहोभाग्य कहां !"

इसी समय सहसा एक ओर कोलाहल हुआ। मालूम हुआ कि "अचानक अंतःपुर में आग लग गई। लोग कह रहे थे कि आग की लपटों से ऐसा मालूम पड़ रहा है। जैसे राजप्रासादों का शिखर सोने का बना हो। वृक्षों के मुरझा जाने से आग की प्रचण्डता प्रकट हो रही है। क्रीड़ा-पर्वत पर फैला हुआ धुआं काले बादलों के समान

H.000530
015,2HAR 152w3
GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
BANGALORE-1

दिखाई दे रहा है। भय के कारण स्त्रियां आर्त्तनाद कर रही हैं" लावाणक ग्राम में देवी वासवदत्ता आग में जल गई—यह जो अफवाह फैल रही थी, मालूम पड़ता है, उसे ही सत्य करने के लिए वह आग लगी है।

यह सुनकर सब व्याकुल होकर देखने लगे।

वासवदत्ता भी घबरा उठीं। बोलीं, "महाराज, क्षमा कीजिये। मैंने निर्दयता से सागरिका को बेड़ियां डलवा दी थीं। वह जल रही है। उसकी रक्षा कीजिये। उसे बचाइये।"

"सागरिका जल रही है।" यह सुनते ही महाराज दौड़े और उस अग्नि में कूद पड़े। किसीके रोकने पर भी न रुके। यह देखकर वासवदत्ता भी यह कहती हुई—"क्या हमारे ही कहने पर आर्यपुत्र ने अपना जीवन संकट में डाल दिया? तो मैं भी उनका साथ दूं—"स्वामी के पीछे उस अग्नि में घुस गईं। अब तो विदूषक से भी न रहा गया। वह भी उस अग्नि में कूद पड़ा। वसुभूति, बाभ्रव्य सभी उस अग्नि में प्रवेश कर गये। देखते-देखते महाराज अंदर पहुंच गये। वहां जाकर देखते क्या हैं कि सागरिका बैठी हुई है। उन्होंने ज़ोर से पुकारा, "अरे ऐसी हालत में तुम चुपचाप कैसे बैठी हो?"

महाराज को देखते ही सागरिका ने चिल्लाकर कहा, "महाराज, मुझे बचाइये।"

महाराज तेजी से सागरिका को गोद में उठाकर अग्नि से बाहर की ओर भागे। क्षण भर के लिए उनकी आंखें बंद हो गईं। खुलीं तो चकित रह गये। देखा, कहीं कुछ नहीं है। अंतःपुर पहले जैसा ही है। वासवदत्ता, वसंतक, वसुभूति और बाभ्रव्य सभी खड़े हैं। उन्होंने सोचा––क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं ? अथवा यह सब इंद्रजाल था ?

वसंतक बोला, "आप संदेह न करें। यह इंद्रजाल ही है। आपको याद होगा, उस ऐंद्रजालिक ने कहा था न कि हमारा एक खेल और महाराज को देखना होगा। यह वही है।"

महाराज वासवदत्ता से बोले, "देवि, तुम्हारे कहने से मैं सागरिका को ले आया।"

वासवदत्ता हँस पड़ी, "आर्यपुत्र, मैं जानती हूं।"

वसुभूति ने जब सागरिका को देखा तो पहचान लिया। बोले, "महाराज, यह कन्या कहां से आई ?'

महाराज बोले, "महारानी जानती हैं।"

वासवदत्ता ने कहा, "मंत्रिवर, मुझे तो इतना ही पता है कि अमात्य यौगंधरायण ने इसे यह कहकर

मुझे सौंपा था कि यह समुद्र से प्राप्त हुई है, इसलिए इसका नाम सागरिका है।"

राजा ने सोचा--यौगंधरायण ने मुझसे कहे बिना कैसे यह काम किया ?

वसुभूति ने चुपचाप बाभ्रव्य से कहा, "वसंतक के गले की रत्नमाला से और कन्या के समुद्र में मिलने से यह स्पष्ट है कि यह सिंहलेश्वर की पुत्री रत्नावली है।"

फिर वह प्रकट रूप में बोला, "आयुष्मति, यह बताओ कि क्या तुम राजकुमारी रत्नावली ही यह मुसीबत भुगत रही हो ?"

सागरिका ने वसुभूति को देखा तो आंखों में आंसू भर आये। सुस्थिर होकर बोली, "क्या आप अमात्य वसुभूति हैं ?"

दोनों एक-दूसरे को पहचानकर मूर्च्छित हो गये।

वासवदत्ता यह सब देखकर व्याकुल हो उठीं। दुख और आश्चर्य से भरकर बोलीं, "बाभ्रव्य, क्या यह मेरी बहन रत्नावली है ?"

बाभ्रव्य ने कहा, "हां महारानी, यह वही हैं।"

महारानी ने यह सुनकर रत्नावली को गले से लगा लिया और महाराज से कहा, "आर्यपुत्र, मुझे अपने

कृत्य पर लज्जा हो रही है। आप इनके बंधन खोल दीजिये।"

महाराज ने तुरंत सागरिका की बेड़ियां खोल दीं।

इतने में यौगंधरायण भी वहां आ पहुंचे।

महाराज ने पूछा, "यौगंधरायण, यह तो बताओ कि तुमने मुझसे बिना पूछे यह सब क्या किया ?"

यौगंधरायण बोले, "महाराज, मैं इसके लिए क्षमा चाहता हूं। लेकिन इन सिंहलेश्वर-कुमारी के विषय में एक सिद्ध पुरुष ने कहा था कि जो इससे विवाह करेगा, वह चक्रवर्ती होगा। उसके कथन पर विश्वास करके मैंने बार-बार सिंहलेश्वर से यह कन्या आपके लिए मांगी, किंतु सिंहलेश्वर यह समझकर कि ऐसा करने से वासवदत्ता को दुख देगा, हर बार मना करते रहे। तब मैंने एक चाल चली। मैंने यह अफवाह फैला दी कि महारानी वासवदत्ता लावाणक के अग्नि-कांड में जल मरी हैं। इसके बाद बाभ्रव्य को सिंहलेश्वर के पास भेजा।"

महाराज बोले, "इसके आगे मैं सब सुन चुका हूं। लेकिन तुमने इन्हें देवी के पास क्यों रखा ?"

विदूषक बोला, "यह मैं समझ गया। आप अंतःपुर में जायंगे और इसे देख लेंगे इसलिए।"

महाराज हँस पड़े। बोले, "मालूम पड़ता है कि

यह इंद्रजाल भी तुम्हारा ही प्रयोग है।"

यौगंधरायण ने कहा, "हां महाराज, यदि ऐसा न किया जाता तो अंतःपुर में कैद की गई सागरिका को आप कैसे देख पाते और वसुभूति इसे कैसे पहचानते।"

फिर हँसकर उसने महारानी से कहा, "पहचानने के बाद अब देवी, बहन के साथ जैसा उचित हो, वैसा व्यवहार करें।"

वासवदत्ता भी हँस पड़ीं। आंतरिक प्रसन्नता से सिहरकर बोलीं, "मंत्रिवर, साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि इसे महाराज को सौप दूं ?"

फिर रत्नावली की ओर देखकर बोली, "आओ, रत्नावली, आओ। यह काम भी तो मैं बहन की तरह कर लूं।"

इतना कहकर उसने अपने सब गहने रत्नावली को पहना दिये। अनंतर उसका हाथ पकड़कर उसे महा-राज के पास ले गईं और बोलीं, "आर्यपुत्र ! इसे स्वीकार करो। इसका नैहर दूर है। आप ऐसा करें, जिससे इसे अपने बंधु-बांधवों का अभाव न खटके और घर की याद भूली रहे।"

महाराज की इच्छा पूरी हुई। उन्होंने प्रसन्न होकर रत्नावली को ग्रहण कर लिया। सबको बड़ी प्रसन्नता

हुई। वसंतक तो नाचने लगा।

यौगंधरायण ने कहा, "हमारा परिश्रम सफल हुआ। देव, और क्या करूं, बताइये।"

महाराज बोले, "जो हुआ है, उससे बढ़कर प्रिय और क्या होगा। विक्रमबाहु को अपना संबंधी बनाया। पृथ्वी का सार यह सागरिका मुझे मिली। महारानी प्रसन्न हुई। उनको उनकी खोई बहन मिल गई। कोशल हमारे अधिकार में आ गया। तुम्हारे मंत्रित्व में मुझे क्या नहीं मिला, जिसकी मैं इच्छा करूं। फिर भी मैं चाहता हूं कि यथेष्ट वृष्टि करके इंद्र धरती को हरी-भरी करें। ब्राह्मण यज्ञ से देवताओं को तृप्त करें। अनादिकाल तक सज्जनों का सुखप्रद संगम होता रहे और दुर्जनों की वाणी का अंत हो जाय।

MAHATMA GANDHI MEMORIAL LIBRARY

5, Kumara Park (East), Bangalore-1

DATE LABLE

CL. No 015.12HAR 152103N55 Accn. No 17.000530

This book ought to be returned on or before the date last marked below, or fines will be incurred.

Due Date	Ticket No.	Inls.	Due Date	Ticket No.	Inls.

CALL NO.

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.................
ACC No.....................
CALL No...................

Mahatma Gandhi Memorial Library
5, Kumara Park (East), Bangalore-1
BOOK CARD
152W3N55
CL No O15,2HAR Acc. No H.000530
Author HARSHA ( ) ( ).
Title Ratnavali.

Ticket No.	Issue Date	Return Date	Ticket No.	Issue Date	Return Date

O15,2HAR
152W3N55
H.000530.

संस्कृत-साहित्य-सौरभ की पुस्तकें

१. कादंबरी
२. उत्तर-रामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुंतला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानंद
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्षचरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार-चरित : भाग १
१५. दशकुमार-चरित : भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालती-माधव
१९. शिशुपाल-वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमार-संभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता
२७. रावण-वध
२८. सौंदरनंद
२९. कुंदमाला
३०. यशस्तिलक
३१. तिलकमंजरी
३२. प्रतिमानाटक

२३

सैंतीस नये पैसे